ओ३म्

वर्षम् - ११, अङ्कः - १४३

भाद्रपद-आश्विनमासौ-२०७७
सितम्बरमासः-२०२०

आर्ष-ज्योतिः

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास का द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

विद्यया विन्दतेऽमृतम् -केनोपनिषद्

है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश में कोई नहीं,
हम निज विचार जना सकें जिससे परस्पर सब कहीं।
इस योग्य हिन्दी है तदपि अब तक न निज पद पा सकी,
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी?

– मैथिलीशरण गुप्त

प्रसारणकार्यालयः
श्रीमद्दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्, पौन्धा, देहरादूनम्
९४११११०६१०४, ८८१०००५०९६
arsh.jyoti@yahoo.in gurukulpondhadehradun www.pranwanand.org

स्वतन्त्रतादिवस - कार्यक्रम

शस्त्राभ्यास

❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का

द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

भाद्रपद-आश्विनमासौ, विक्रमसंवत्-२०७७ / सितम्बर-२०२०, सृष्टिसम्वत्-१,९६,०८,५३,१२१

वर्षम्-११ :: अङ्कः-१४३ मूल्यम्-रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖संरक्षकाः❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

प्रो.देवीप्रसादत्रिपाठीवर्याः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

डॉ. रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖व्यवस्थापकाः❖

ब्र. आकाशार्यः

ब्र. सुधांशुः

❖कार्यालयः❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौन्धा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ०९४११९०६१०४,८८१०००५०९६

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	पृष्ठः
आर्य्याभिविनयः	२
सम्पादकीय	३
दान दिये धन ना घटे	६
ऋषि दयानन्द द्वारा हिन्दी अपनाने से हिन्दी का...	०८
एतद्विमर्श पाणिनिसूत्रजालम् (०२)	१२
मानव जीवन और नैतिकता	१५
मानवता	१७
राष्ट्रभाषा हिन्दी	१८
योगदर्शनशिक्षणम्	२०
हम और हमारे वे	२२
संस्कृतशिक्षणम्	२३

सूचना - कोरोना (केविड-१९) के कारण से अप्रैल मास से पत्रिका प्रकाशित न हो सकी, अब विलम्ब से प्रकाशित होकर आपकी सेवा में प्रेषित की जा रही है, कोरोना के कारण शायद कुछ क्षेत्रों में यह अंक डॉक माध्यम से नहीं प्राप्त हो पायेगा, इसके लिए हमें खेद है। **- आचार्य डॉ. धनञ्जय**

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशनतिथि-३ सितम्बर २०२० :: डाकप्रेषणतिथि-८ सितम्बर २०२०

आर्य्याभिविनयः

(११)

ऋषिः– काण्वो मेधातिथिः। **देवता**– विष्णुर्देवो। **छन्दः**– गायत्री। **स्वरः**– षड्जः।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्तधामभिः॥ –ऋग्वेद १/२२/१६॥

अतः। देवाः। अवन्तु। नः। यतः। विष्णुः। विऽचक्रमे। पृथिव्याः। सप्त। धामऽभिः॥

अन्वयः–

यतोऽयं विष्णुर्जगदीश्वरः पृथिवीमारभ्य प्रकृतिपर्यन्तैः सप्तभिर्धामभिः सह वर्त्तमानाँल्लोकान् विचक्रमे रचितवानत एतेभ्यो देवा विद्वांसो नोऽस्मानवन्त्वेतां विद्याम् अवगमयन्तु॥

आर्याभिविनयः–

हे **(देवा)** विद्वानो! **(विष्णुः)** सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिए **(पृथिव्याः)** पृथिवी से लेके **(सप्त)** सप्तविध **(धामभिः)** धाम अर्थात् ऊचे-नीचे सात प्रकार के लोकों के साथ वर्तमान व्यापक ईश्वर ने **(यतः)** जिस सामर्थ्य से सब लोको को रचा है **(अतः)** सामर्थ्यात् उसी सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करें। हे विद्वानो! तुम लोग भी उस विष्णु के उपदेश से **(नः अवन्तु)** हमारी रक्षा करो। कैसा है वह विष्णु? जिसने इस सब जगत् को **(विचक्रमे)** विविध प्रकार से रचा है। उसकी नित्य भक्ति करो॥

पदार्थः–

(अतः) अस्मात् कारणात् **(देवाः)** विद्वांसोऽग्न्यादयो वा **(अवन्तु)** अवगमयन्तु प्रापयन्ति वा पक्षे लडर्थे लोट्। **(नः)** अस्मान् **(यतः)** यस्मादनादिकारणात् **(विष्णुः)** वेवेष्टि व्यापनोति चराचरं जगत् स परमेश्वरः। **विषेः किच्च।** (उणा० ३.३८) अनेन **'विष्लृ'** धातोर्नुः प्रत्ययः किच्च। **(विचक्रमे)** विविधतया रचितवान् **(पृथिव्याः)** पृथिवीमारभ्य। **पञ्चमीविधाने ल्यब्लोपे कर्म्मण्युपसंख्यानम्।** (अष्टा०-२.३.२८) अनेन पञ्चमी। **(सप्त)** पृथिवीजलाग्निवायुविराट्-परमाणुप्रकृत्याख्यैः सप्तभिः पदार्थैः। अत्र **सुपां सुलुग्...** इति विभक्तेर्लुक्। **(धामाभिः)** ददाति सर्वाणि वस्तूनि येषु तैः सह॥

संस्कृताभिविनयः–

हे विद्वांसः! सर्वव्यापकः परमेश्वरः सर्वान् जीवान् पापपुण्ययोः फलभोगाय सर्वपदार्थस्थित्यर्थं पृथिव्या आरभ्यसप्तविधैर्धामभिः उच्चैः नीचैः सप्रप्तकारकैर्लोकैः सह वर्त्तमानो व्यापकेश्वरो येन सामर्थ्येन सर्वान् लोकान्नरचयत् तेनैव सामर्थ्येनास्मानपि रक्षयेत्। हे विद्वाः! यूयमपि तस्य विष्णोरुपदेशेनास्मानवथ। कीदृशोऽस्ति सः विष्णुः? येन इदं सकलं जगत् वैविध्येन रचितम्। तं नित्यं भजत॥

– शिवकुमारः, गुरुकुलपौन्धा, देहरादूनम्

सम्पादक की कलम से...

विश्वशान्ति की स्थापना कैसे हो?

यदि संसार के समस्त मानव ही नहीं अपितु समस्त प्राणी भी हमारे विश्वसनीय मित्र हो जायें तो हमारा किसी से भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। इस स्थिति में कभी अशान्ति का भी प्रश्न नहीं होता। आज मनुष्य मनुष्य से ही त्रस्त है, अन्य प्राणी से तो क्या अपेक्षा की जा सकती है? मनुष्य का मनुष्य पर ही विश्वास नहीं इसीलिए अशान्ति है। वेद तो मनुष्य की ही नहीं अपितु विश्व की शान्ति की कामना करता है। महर्षि दयानन्द विश्वशान्ति के उपासक थे, वो प्रत्येक स्थल पर शान्ति की कामना करते हैं।

न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्

अर्थात् इस संसार में जितनी योनियाँ है, उन सबमें मनुष्य योनि सर्वोपरि है। महर्षि दयानन्द के अनुसार मनुष्य उसी को कहा है जो मननशील होकर स्वात्मवत् होकर अन्यों के सुख-दु:ख और हानि-लाभ को समझें। जो स्वयं के लिए है वह प्रकृति, जो दूसरों का छीन कर खाये वह विकृति और जो स्वयं दु:ख उठाकर भी दूसरों को सुख पहुँचाये, उनके सुख में आनन्द व उत्साह दिखाये वह संस्कृति है, यही हमारी वैदिक संस्कृति है-**परोपकराय सतां विभूतय:** अर्थात् सज्जनों की सम्पत्ति परोपकार के लिए होती है।

विश्वशान्ति की बात कहने से पहले यदि हम स्वयं को शांत रख ले, तो विश्व में भी शान्ति रहेगी। पहले स्वयं को शांत फिर परिवार, समाज, देश तब कहीं व्यापक स्तर पर विश्व का चिन्तन हो सकता है। सर्वत्र शान्ति स्थापित हो इसके लिए आवश्यक है कि लोग परस्पर मित्रवत् व्यवहार करने वाले हो, इसलिए महर्षि दयानन्द यजुर्वेद का भाष्य करते हुए लिखते हैं कि-

मित्रस्य मा चक्षुषा ईक्षध्वमग्नय: सगरा: सगरस्थसगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नय: पिपृतमग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट॥ -यजु.-५/३४

अर्थात् हम प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखें, समस्त प्राणी हमारे मित्र हैं और हम उन्हें इसी भाव से देखते हैं, इसी संस्कृति को विश्ववारा संस्कृति कहा गया है।

महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य में कहते हैं -

भूर्भुव: स्व: सुप्रजा प्रजाभि: स्यां सुवीरो वीरै: सुपोष: पोषै:। नर्य प्रजां मे पाहि शंस्य पशून्मे पाहि अथर्य पितुं मे पाहि॥ यजु.-३/३६

महर्षि दयानन्द ने लोगों से विवादों को मिटाकर शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में कहा है-'**मनुष्य का जन्म होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद-विवाद विरोध करने-कराने का है। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और आगे होते रहेगें उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं।**' (सत्यार्थप्रकाश, अनुभूमिका-एकादशसमुल्लास)

आगे भी कहते हैं कि-

'जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।' (सत्यार्थप्रकाश, अनुभूमिका-एकादशसमुल्लास)

इस कथन को यदि व्याख्यात किया जाए और इसमें निहित भाव का विस्तार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि यद्यपि विचारशील मनुष्यों में मत, सम्प्रदाय, राजनीति तथा आर्थिक प्रश्नों को लेकर भिन्नता स्वभाविक बात है किन्तु मनुष्य निश्चय कर लें तो एक मेज के इर्द-गिर्द बैठकर वह अपने पारस्परिक मत भेदों को दूर कर सकते हैं। इस स्थिति में परस्पर द्वन्द्वों को समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। अथर्ववेद का मन्त्र ऐसी ही कामना करता है कि -

संजानीध्वं संपष्टच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

-अथर्व.-६/६३/१

हे साधकों! जिस प्रकार पूर्व समय से ही देवगण संयुक्त होकर अपने हव्यों को ग्रहण करते है, उसी प्रकार समान रूप से ज्ञान प्राप्त करो, परस्पर मिलकर रहो तथा तुम्हारे मन संयुक्त हो एक संकल्प युक्त हो, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको।

जहाँ-जहाँ सत्य हुआ वहाँ-वहाँ सुख होगा, वहीं शान्ति होगी, मानवता भी यही कहती है-सत्य की जय तथा असत्य की क्षय। मित्रता से विवाद को समाप्त करना हमारी मनुष्य जाति का काम है। वादे वादे जायते तत्त्वबोध इस नीति वाक्य में यही गूंज सुनाई देती है, वह मनुष्य ही है जो परस्पर प्रेमयुक्त परिचर्चा के द्वारा वैर विरोध दूर करता है। अथर्ववेद में कामना करने के लिए मनुष्यों को उपदेश किया है -

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा: नाभिमिवाभितः॥ अथर्व.-३/३०/६

अर्थात् हे मनुष्यों आपके जल पीने के स्थान एक हो, हम आपको एक ही प्रेमपासे में साथ-साथ बाँधते है, जिस प्रकार पहियों के अरे नाभि के आश्रित होकर रहते है, उसी प्रकार आप सब भी एक ही फल की कामना करते हुए अग्नि देव की उपासना करें।

महर्षि दयानन्द यजुर्वेद के **'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'** (यजु.-३४/१-६) के द्वारा समाज में व्याप्त अशान्ति अथवा हिंसा हमारे मनो की ही उपज है, मानसिक परिवर्तन द्वारा ही हम इसे शान्त कर सकते हैं। विश्व व्यापार केन्द्र की त्रासदी कोई तकनीकी या मानवीय भूल नहीं अपितु एक वैचारिक त्रुटि या हानि का परिणाम है। इन लोगों की वर्तमान गलत सामूहिक सोंच का निकट या दूर भविष्य में क्या भयंकर दुष्परिणाम होगा यह निकट भविष्य में हम देख सकेंगे। प्रश्न तो यह उठता है क्या ये स्थिति अपरिहार्य है? क्या इसका दिग्दर्शन नहीं किया जा सकता? हाँ बिल्कुल किया जा सकता है किन्तु सोच में परिवर्तन अवश्य किया जा सके। इस परिवर्तन के लिए भी हमें अपने मन रूपि हवि को दान करना है, तभी निश्चित रूप से उसका प्रतिफल भी हमें मिलेगा-

देहि मे ददामि ते निमेधोहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि ते निहराणि ते स्वाहा॥

-अथर्व.-३/५०

विश्व की प्रत्येक दृश्यादृश्य वस्तु अथवा घटनाएँ सुख रूप अथवा दुःखरूप मन की अनुकूलन के कारण ही है। सामूहिक विचार ही किसी क्षेत्र विशेष में अच्छी या बुरी परिस्थितियों के निर्माण में सहायक होते हैं। जहाँ तक परिस्थितियों के अच्छे या बुरे होने का प्रश्न है तो अच्छी और बुरी कोई चीज है ही नहीं। हमारी सोच ही किसी घटना को अच्छा या बुरा बनाती है। जो हमारे मन के अनुकूलन के कारण ही है।

आज चारों तरफ हिंसा, घृणा, विरोध ही विरोध है परन्तु हिंसा को हिंसा से, घृणा को घृणा से, विरोध को विरोध से समाप्त नहीं किया जा सकता। यह शाश्वत नियम है। महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य में कहते हैं कि-

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता। पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः॥ तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य

यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ यजु.-४/४

अर्थात् देवता हमें शुद्ध करें सब प्रकार तथा सब तरफ से हम शुद्ध रहें।

जब हम शुद्ध तथा पवित्र होगें तभी समस्त दोषों से मुक्त होकर स्वयं शान्तियुक्त होकर दूसरों को शान्ति प्रदान कर सकेंगे।

३६ वें अध्याय के भाष्य में महर्षि दयानन्द कहते हैं कि-

यतो यतः समीहसे ततो नोभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं न पशुभ्यः॥

यजु.-३६/२२

अर्थात् हे ईश्वर! जहाँ-जहाँ सृष्टि में हिंसक पशु या मानव हो वहाँ हमारी रक्षा कीजिए, जहाँ-जहाँ ये नहीं है और आपकी सृष्टि है वहाँ-वहाँ से भी आप हमारी रक्षा करें।

विश्व में कोई देश आकार में बड़ा है तो कोई छोटा है, कोई धनी है तो कोई निर्धन है। लेकिन पारस्परिक शान्ति के लिए जरूरी है कि अपने-अपने निश्चित हिस्से में व्यक्ति तथा राष्ट्र सन्तुष्ट रहें। देवताओं के समान अपने-अपने निश्चित भाग को ग्रहण करके सबको मिलकर चलना चाहिए, एक साथ बोलना चाहिए तथा सबके विचार भी एक-से हों। इसप्रकार शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व से प्रत्येक व्यक्ति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में सुख-शान्ति होगी।

महर्षि दयानन्द ने अपनी कालजयी कृति सत्यार्थ प्रकाश में वैदिक शिक्षा को विश्वशान्ति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताते हुए द्वितीय एवं तृतीय समुल्लास में विश्वशान्ति परक शिक्षा का वर्णन किया है।

वैदिक शिक्षा केवल साहित्यिक व सैद्धान्तिक ही नहीं, अपितु उसमें क्रियात्मक ज्ञान भी प्रदान किया जाता है, जिसमें जीविकोपार्जन से सम्बन्धित विषयों की व्यवस्था है। विद्यार्थी एक निश्चित व्यवसाय का चयन करता है। विनम्रता के लिए-भिक्षाटन, बौद्धिक विकास के लिए-यज्ञ, स्वाध्याय एवं शारीरिक विकास, स्वस्थ व स्वावलम्बी बनाने हेतु-आश्रम की देखभाल, विद्यार्थी के दैनन्दिन जीवन में सम्मिलित रहते हैं। यह बेरोजगारी को दूर करने का सबसे बड़ा कारण है। वैदिक शिक्षा को अपनाकर बेरोजगारी एवं इससे उत्पन्न अशान्ति से मुक्ति मिल सकती है। शिक्षा समाप्ति के पश्चात् स्नातक अपने सामाजिक व पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करे तथा परिवार, देश व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, इसके लिए गुरुकुलों में वर्णव्यवस्था के आधार पर शिक्षा दी जाती रही है। विश्वशान्ति की प्रतिस्थापना के लिए शिक्षा का स्वरूप बदले। जिसका स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में विश्लेषण किया है।

विश्वशान्ति के लिए अनिवार्य है कि हम सबके आधारभूत विचार एक-समान हों। कौन-सा कार्य करना है? कौन-सा कार्य नहीं करना है? यह सब कुछ स्पष्ट हो। इस प्रकार की पारदर्शिता से पारस्परिक सम्बन्ध और अधिक मजबूत होते हैं। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि 'समानी वः आकूतिः' (ऋग्वेद) अर्थात् हमारे विचार एक समान हो, चित्त व मन सब एक हो....। जब सबके विचार भाव समान होंगे तभी विश्व में हिंसा, गरीबी, अकाल तथा अन्य प्रकार की समस्याओं का शमन करने में हम सक्षम हो सकते हैं।

शान्तिपूर्ण राष्ट्र के निर्माण के लिए हमें क्रूरता, निर्दयता, हृदयहीनता, प्रतिद्वन्द्वता के नियम और येन-केन प्रकारेण सम्पत्ति एकत्रित करने की प्रवृत्ति का त्याग करना होगा। इस समय आवश्यकता है महान् त्याग, महान् निष्ठा तथा महान् धैर्य की। हम अपनी क्षुद्र स्वार्थवृत्तियों को त्याग कर सामूदायिक सुख-शान्ति के लिए प्रतिबद्ध होवें...

-शिवदेव आर्य,
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६

दान दिये धन ना घटे

(दान प्रशंसा सूक्त)

❑ प्रो. रामप्रसाद वेदालङ्कार...✍

ऋग्वेद : मण्डल-१०, सूक्त-११७, मन्त्र-१

ऋषिः-भिक्षुः। देवता-धनान्नदानप्रशंसा।

दान देने से धन घटता नहीं।

न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यव। उतो रयिः पृणतो नोपदस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥१॥

अन्वय :- क्षुदम् इत् वधं, देवाः वै न उ ददुः, उत आशितं मृतय+उपगच्छन्ति। उत उ पृणतः रयिः न उनदस्यति। उत अपृणन् मर्डितारं न विन्दते।

१ केवलाघो भवति केवलादी।। ऋ. १०-११७-६

सं. अन्वयार्थ- केवल भूखों को ही मौत नहीं मारती। भूखे ही मरते हैं देवों ने कभी ऐसा नहीं कहा। वे तो कहते हैं कि मरते वे भी हैं जिनके पेट भरे रहते हैं और दाता का ऐश्वर्य क्षीण नहीं होता तथा जो अदाता-कृपण-कंजूस है, उसको कभी समय आने पर सुख देने वाला नहीं मिलता।

अन्वयार्थ- (क्षुधम् इत् वधं, देवाः वै न ददुः) भूखों को ही मृत्यु प्राप्त होती है, देवों-विद्वानों ने निश्चय ही यह विचार नहीं दिया, अर्थात् केवल भूखे व्यक्ति ही मरते हैं, देवों ने यह ही नहीं मान (उत् आशितं मृत्यवः उपगच्छन्ति) मृत्युएं भर पेट खाए पिये मनुष्यों को भी प्राप्त होती है। अथात् जिनका पेट भरा रहता है, मरते वे भी हैं। ऐसा देव जन मानते हैं। (उत उ पृणतः रयिः न उपदस्यति) और यह भी निश्चित है कि दाता का ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होता, (उत अपृणन् मर्डितारं न विन्दते) और अदाता अर्थात् दूसरे को अपने धन-अन्न से न तृप्त करने वाला कभी समय आने पर अपने को सुख देने वाले को नहीं पाता।

भावार्थ- संसार में सिर्फ भूखे ही नहीं मरते वरन् जो भरपेट खाते हैं, मौत उन्हें भी नहीं छोड़ती। दाता का धन कभी घटता नहीं कभी क्षीण नहीं होता। इस पर भी अपने धन-अन्न आदि से जो किसी को सुख नहीं देता, तो समय आने पर उस को भी कोई सुख देने वाला नहीं मिलता।

व्याख्या- लोग प्रायः यही समझते है कि जो दुनिया में भूखे हैं, प्यासे हैं, नंगे हैं, वे ही केवल मरते हैं। परन्तु वेदों के अनुसार देवों की मान्यता है कि केवल वे ही नहीं मरते, जो भूखे-प्यासे हैं, वरन् मृत्यु उन्हें भी नहीं छोड़ती जिनका पेट भरा रहता है। संसार की इस सत्यता को देखकर मनुष्य को चाहिये कि यदि सौभाग्य से उसके घर में अन्न है, जल है, वस्त्र है, धन है तो वह अपने साथ-साथ दूसरों की भूख मिटाने का प्रयास भी करें, दूसरों की प्यास बुझाने का भी प्रयत्न करे, दूसरों के तन को ढककर उनकी लाज बचाने की कोशिश करे, दूसरों की धन से भी मदद करे। यदि वह ऐसा करेगा, तो वेद माता के अनुसार उसको यह निश्चित समझना चाहिये कि -'पृणतः रयिः न उपदस्यति।' जो दूसरों को दान देता है जो दूसरों का तन ढककर दूसरों की लाज बचाता है, जो दूसरों को कपड़ा-लत्ता देकर उनको सर्दी गर्मी से बचाता है, जो दूसरों को अपने अन्न-जल आदि से तृप्त करता है, तो उसका वह दिया हुआ धन आदि व्यर्थ नहीं जाता। उससे जहाँ दूसरों को सुख मिलता है, तृप्ति मिलती है, जीवन मिलता है, वहाँ इनका भी हृदय प्रसन्न होता है, और इससे दाता का धन घटता भी नहीं अपितु प्रभु की महती अनुकम्पा से, महापुरुषों के आशीर्वाद से, अपने हितैषियों की मंगलकामनाओं से तथा दीन-दुखियों की हृदय से निकली हुई दुआओं से वह तो फिर और अधिक बढ़ता है।

देखो, यह धरती माता कितनों को खिलाती है, कितनों को पिलाती है, कितनों को पहनाती-ओढ़ाती है, कितनों की झोलियाँ धन-अन्न, फल-फूल, रत्न-मणियों आदि से भर्ती है, फिर भी इन सब पदार्थों से उसकी झोली कभी रिक्त नहीं होती। सूर्य अपने प्रकाश से चौबीसों घण्टे पृथिवी आदि को सतत् प्रकाश प्रदान करता रहता है, तेज

प्रदान करता रहता है, फिर भी वह ज्यों का त्यों दिखायी देता है। गंगा-यमुना आदि नदियाँ न जाने कब से अनेकों प्राणियों को पानी पिला रही हैं और उनकी तृष्णा को शान्त कर रही हैं, न जाने कब से अनेकों प्राणियों को ये स्नान करा रही हैं और उनके शरीर की तपस् मिटा रही हैं उनके शरीर को धो-धाकर साफ-सुथरा कर रही हैं, सदियों से ये खेतों को तर-बतर करके हरा-भरा कर रही हैं, अनेकों को घर-परिवार में ले जाने के लिये भर-भर कर पानी के ड्रम-कनस्तर-घड़े-बालटियाँ प्यार से प्रदान कर रही हैं। सतत् यह सब करते हुए भी 'नदी न घट्यो नीर' रूप वाक्य के अनुसर उनका जल कभी घटा नहीं। वे वैसी की वैसी जल से भरी-भराई निरन्तर बिना भेद-भाव के सबकी सोत्साह सेवा-सहायता करने के लिये दौड़ी चली जा रही हैं। ऐसे ही आम-अमरूद, सेब-सन्तरे, आलूचे-आलूबुखारे, आडू-अनार, लीची-लोकाट, खरबूजे-तरबूजे, ककड़ी-खीरे आदि-आदि के वृक्ष और लताएं और पौधें न जाने कब से फूल-फलों से शाक-भाजियों आदि-आदि से लोगों की झोलियां व उदर पेट भर रहे हैं, फिर भी समय आने पर ये सब वृक्ष आदि फूल-फलादियों से भरे पड़े रहते हैं, लदे पड़े रहते हैं। हम इस दुनियाँ में देखते हैं कि जो देते रहते हैं वे सदा धनी बने रहते हैं। पर जो देने के सुअवसरों पर 'हमारे पास नहीं है, नहीं है, यह कहते रहते हैं, तो उनके पास फिर सचमुच कभी वह सब धन-अन्न-वस्त्र आदि नहीं ही हो जाता है। जैसे कि किसी संस्कृत के कवि ने कहा है कि -'**दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद् दान परो भवेत्।**' न देने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है। मनुष्य कभी दरिद्र न हो, इसलिये उसे चाहिये कि वह दानी बने-दाता बने-सदा कुछ न कुछ देता ही रहे। देते रहने से मनुष्य बढ़ता ही है। अन्यत्र भी कहा है कि-

गोदुग्धं वाटिका पुष्पं विद्याकूपोदकं धनम्।
दानाद्विवर्धते नित्यमदानाच्च विनश्यति।

गाय का दूध, वाटिका के पुष्प, विद्या-ज्ञान, कुएँ का जल और धन-अन्न आदि यह सब कुछ देते रहने से बढ़ता है और अगर इनको न प्रदान किया जाए, तो यह सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः इस सबके देते रहने में ही हित है। ग्रहण करने वाले का तो उससे काम चल जाता है। उसकी तो उससे मुसीबत टल जाती है-और उस धन आदि का सदुपयोग करने से उस दाता को पुण्य मिलता है। उसका भला होता है। इस प्रकार जो दूसरों के तन को ढकने व उसको सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए कपड़े देता है, दूसरों की अपने दाने-पानी से क्षुत्पिपासा को शान्त करता है, दूसरों की अन्य आवश्यक आवश्यकताओं को पूर्ण करता है, तो इससे उसका धन-अन्न आदि घटता नहीं उसका वह ऐश्वर्य क्षीण नहीं होता। वेद में उस प्यारे प्रभु का एक बड़ा ही सुन्दर विशेषण आया है। वह यह है कि '**वह प्रभु भूरिदा**' है वह बहुत देने वाला है। इतना कि कभी-कभी तो लेने वाला भी चकित रह जाता है। ऐसे व्यक्ति को वेद कहता है कि मनुष्य को एक बात और भी स्मरण रखनी चाहिये। वह यह कि यदि उसने अपने अच्छे दिनों में अपने धन-अन्न आदि पदार्थों से सम्पन्न दिनों में, अपने सुख-सौभाग्यों से प्रपन्न दिनों में, अपने धन-वैभवों से भरपूर दिनों में अपने धन-वैभवों से किसी अन्य की कुछ सहायता नहीं की, किसी अन्य के दुख-दर्द को दूर नहीं किया, किसी अन्य को सुख-शान्ति नहीं पहुंचाई तो फिर यह निश्चित है कि समय पड़ने पर कभी बुरे दिन आने पर उसको पुकारने पर भी कोई सहायक नहीं मिलेगा, दुःख दर्दों से कराहने पर भी कोई मददगार नहीं मिलेगा, जगह-जगह दुःखों से दुःखी होकर और सुखों के लिये प्रार्थना करने पर भी उसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा, जो उसके दुःख को दूर करे, जो उसके घाव पर मरहम लगाए। तो वेद के इस सदुपदेश को हृदयङ्गम कर मनुष्यों को चाहिये कि वे समय पड़ने पर परस्पर एक दूसरे की सहायता करें, परस्पर एक दूसरे की मदद करें, परस्पर एक दूसरे के दुःख दर्दों को दूर करें, तथा जी-जान से एक दूसरे को सुखी करें, ताकी आगे चलकर उन्हें इस विषय में कभी पश्चाताप न करना पड़े।

- भूतपूर्व उपकुलपति,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

ऋषि दयानन्द द्वारा हिन्दी अपनाने से हिन्दी का देश-देशान्तर में प्रचार हुआ

❑ मनमोहन कुमार...

आज हम जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं उसका उद्भव एवं विकास विगत लगभग दो सौ वर्षों में उत्तरोत्तर हुआ दृष्टिगोचर होता है। ऋषि दयानन्द (१८२५-१८८३) के काल में हिन्दी की उन्नति हो रही थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को हिन्दी की उन्नति करने वाले पुरुषों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऋषि दयानन्द के समकालीन थे। वह अल्पायु में ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनके बाद हिन्दी को साहित्यिक रूप देने व उसे समृद्ध करने के लिये अनेक कवियों, लेखकों व नाटक आदि की रचना करने वाले हिन्दी के विद्वानों का जन्म हुआ। ऋषि दयानन्द ने भारतेन्दु जी के बाल्यकाल में ही अपना हिन्दी भाषा का सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ लिखकर प्रचारित किया था जिसका प्रचार देश के अनेक भागों में हुआ और इसी ग्रन्थ के कारण लोगों को हिन्दू समाज के अन्धविश्वासों व कुरीतियों का दिग्दर्शन हुआ था। विलुप्त वैदिक धर्म एवं संस्कृति का अनावरण भी ऋषि दयानन्द के उपदेशों एवं उनके सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थों से हुआ था।

ऋषि दयानन्द के समय में धर्माचार्यों को विद्या व अविद्या का भेद विदित नहीं था। सभी अपनी अविद्या को विद्या व ज्ञान मानकर अभिमान करते थे और अपने मत को उत्तम और दूसरे मतों को हेय मानते थे। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सत्य एवं असत्य सिद्धान्तों की खोज की थी और असत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों की समीक्षा कर उनका तर्क एवं युक्तियों से खण्डन कर उनका प्रचार किया। उनका मानना था कि सत्य ही मनुष्य व मनुष्य जाति की उन्नति का कारण व आधार होता है। बिना सत्य के ग्रहण किये और असत्य का त्याग किये मनुष्य जाति की उन्नति नहीं हो सकती। यह सत्य सिद्धान्त इस सृष्टि में अनादि काल से प्रवृत्त है और अनन्त काल तक रहेगा। आश्चर्य है कि इस सिद्धान्त का विज्ञान में तो उपयोग किया जाता है, सैद्धान्तिक रूप में भी किया जाता है, परन्तु मत-मतान्तर अपने अपने व्यवहारों में इसका पूर्णतः पालन नहीं करते। एक मत दूसरे मत को प्रायः हेय मानता तथा स्वमत का ही बिना सत्यासत्य का विचार किये पोषण करता है। इसी कारण से संसार में अनेक मत-मतान्तर हैं जो देश व समाज की उन्नति में साधक कम तथा बाधक अधिक हैं। देश, समाज तथा व्यक्ति-व्यक्ति की उन्नति के लिए सत्य की प्रतिष्ठा एवं असत्य का त्याग किया जाना आवश्यक है। इसी सिद्धान्त को ऋषि दयानन्द ने देश व समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर प्रचार किया था और इसके लिये उन दिनों सबसे अधिक जानी व समझी जाने वाली भाषा, जिसे वह आर्यभाषा कहते थे, जो वस्तुतः वर्तमान हिन्दी के नाम से जानी जाने वाली भाषा है, प्रयोग में लाकर देश देशान्तर में प्रचार कर इसकी उन्नति में योगदान किया था। आज हिन्दी का जो उन्नत व प्रभावशाली स्वरूप तथा इसका सर्वत्र प्रचार व स्वीकारोक्ति हम देखते हैं, उसमें सर्वाधिक योगदान यदि किसी व्यक्ति व संस्था का है तो वह ऋषि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज का है।

सत्यार्थप्रकाश ऋषि दयानन्द जी की आर्य हिन्दी भाषा में रची गयी अमर रचना है। इससे पूर्व किसी मत, पंथ व सम्प्रदाय ने अपने ग्रन्थों की रचना हिन्दी में नहीं की। ऋषि दयानन्द को अपने कलकत्ता

प्रवास में ब्रह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन जी से हिन्दी को अपनाने का सुझाव मिला था। इसका कारण था कि ऋषि दयानन्द इससे पूर्व संस्कृत में ही व्याख्यान देते व बोलचाल में भी संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। उनकी संस्कृत भाषा को सामान्य जन समझ नहीं पाते थे जिससे धर्म प्रचार में एक अवरोध की स्थिति थी। ऋषि दयानन्द को अपने विचारों के अनुवाद के लिये दूभाषियों की सेवायें लेनी पड़ती थी जो ऋषि दयानन्द का पूरा आशय जनता को बताने में असमर्थ रहते थे और कुछ चालाक व विरोधी विचारों के लोग उनके आशय के विरुद्ध भी लोगों को बताया करते थे। इस दृष्टि से धर्म प्रचार को प्रभावशाली बनाने के लिये देश की जन–जन की भाषा को अपनाना आवश्यक था। ऋषि दयानन्द ने हिन्दी के महत्व को समझ कर श्री केशवचन्द्र सेन जी के प्रस्ताव को तत्काल ही स्वीकार कर लिया था और तभी से उन्होंने हिन्दी भाषा में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया जिसमें समय के साथ सुधार होता गया। इसी कारण उन्होंने सन् १८७४ में अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना भी हिन्दी भाषा में की थी। इसके ९ वर्ष बाद जब उनकी हिन्दी काफी परिमार्जित व परिष्कृत हो गई थी, तो उन्होंने इस ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण भी निकाला था। यह दोनों ही संस्करण अत्यन्त उपयोगी हैं जिसे पढ़कर न केवल पाठक हिन्दी का जानकार वा विद्वान बन जाता है अपितु उसके भाषा विषयक ज्ञान में भी सुधार होता है जिससे वह संस्कृत निष्ठ हिन्दी शब्दों का प्रयोग कर हिन्दी का परिमार्जित एवं शुद्ध रूप में व्यवहार कर इसके प्रचार व प्रसार में सहयोग करता है। सत्यार्थप्रकाश को इस बात का भी गौरव है कि विश्व का बहुचर्चित एवं वैदिक धर्मी अनुयायियों का वेदों के बाद सुप्रतिष्ठित धर्मग्रन्थ ''सत्यार्थप्रकाश'' लोक भाषा हिन्दी में है। सत्यार्थप्रकाश से वेद, उपनिषद, दर्शन तथा मनुस्मृति के अनेक मन्त्रों, श्लोकों व संस्कृत वचनों के हिन्दी अर्थ पहली बार प्रकाश में आये। इससे लोगों में वेद, उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति, रामायण एवं महाभारत आदि ग्रन्थों के अध्ययन की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई थी। वैदिक आर्य विद्वानों ने इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये इन सभी शास्त्रीय व इतिहास के ग्रन्थों के श्लोकों के हिन्दी अर्थों के साथ संस्करण निकाले जिससे हिन्दी का देश भर में प्रचार हुआ। यदि ऋषि दयानन्द न आये होते और उन्होंने सत्यार्थप्रकाश को हिन्दी में न लिखा होता व हिन्दी को अपनाने का आन्दोलन न चलाया होता, तो आज हम हिन्दी की जिस सन्तोषजनक अवस्था को देख रहे हैं, वह कदापि न होती। हिन्दी का प्रचार, प्रसार तथा प्रभाव बढ़ाने में यदि किसी संस्था व मत ने सर्वाधिक योगदान दिया है तो वह देश का आर्यसमाज संगठन ही है।

हिन्दी के प्रचार प्रसार में आर्यसमाज द्वारा अपनी स्थापना वर्ष १८७५ से ही देश के अनेक भागों में निकाली गई पत्र–पत्रिकाओं का भी योगदान है। पंजाब में उर्दू का अत्यधिक प्रभाव था। हिन्दी पाठक नगण्य होते थे। ऐसे समय में भी आर्यसमाज के प्रमुख नेता व विद्वान स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने उर्दू पत्र सद्धर्म प्रचारक पत्र को हिन्दी में प्रकाशित कर एक बड़ा निर्णय लिया था जिससे पंजाब में हिन्दी प्रचार में प्रशंसनीय लाभ हुआ। लाहौर से श्री खुशहालचन्द खुर्सन्द जी का उर्दू मिलाप निकलता था। हिन्दी समाचार पत्र की वहां कोई सम्भावना नहीं थी। ऐसी स्थिति में भी श्री खुशहालचन्द खुर्शन्द, जो बाद में महात्मा आनन्द स्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हुए, के सुपुत्र महाशय यश जी ने लाहौर से दैनिक हिन्दी मिलाप पत्र का प्रकाशन कर हिन्दी के प्रचार प्रसार में महनीय योगदान किया। इसी प्रकार आर्यसमाज के अनेक विद्वानों ने देश के अनेक भागों में ऋषि दयानन्द के हिन्दी प्रेम व आग्रह को सामने रखकर हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन किया जिससे हिन्दी का देश भर में प्रचार

हुआ। आर्यसमाज के सभी विद्वान देश भर में प्रचार के लिये जाते थे। दक्षिण भारत के कुछ भागों में भी आर्यसमाज के विद्वानों ने प्रचार किया। सभी विद्वान हिन्दी भाषा में ही प्रचार करते व व्याख्यान देते थे। आर्यसमाज का प्रायः समस्त साहित्य हिन्दी भाषा में ही है। इस कारण भी देश में हिन्दी का प्रचार प्रसार हुआ। आर्यसमाज ने देश को अनेक हिन्दी सेवी विद्वान, लेखक, कवि, वेदभाष्यकार, अनुवादक व सम्पादक आदि दिये। इन सबने हिन्दी के प्रचार प्रसार में योगदान किया है।

सन् १८८२ में ब्रिटिश सरकार ने डा. हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर उससे राजकार्यों के लिए उपयुक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा था। यह आयोग हण्टर कमीशन के नाम से जाना गया। यद्यपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी भाषाओं का प्रयोग ही होता था, परन्तु स्वामी दयानन्द जी के सन् १८७२ से १८८२ तक व्याख्यानों, ग्रन्थ-लेखन, शास्त्रार्थों आदि के प्रचार एवं इसके अनुयायियों की हिन्दी सेवा व निष्ठा से हिन्दी भाषा भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई थी। इस हण्टर कमीशन के माध्यम से हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिये स्वामी दयानन्द जी ने देश की सभी आर्यसमाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन हण्टर कमीशन को भेजन की प्रेरणा की और जहाँ से ज्ञापन नहीं भेजे गये थे, उन्हें स्मरण पत्र भेजकर शीघ्र ज्ञापन भेजने के लिए सावधान किया। आर्यसमाज फर्रुखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा था – ''यह काम एक के करने का नहीं है और अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ (हो गया अर्थात् हिन्दी राजभाषा बना दी गई) तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायेगी।" स्वामी जी की प्रेरणा के परिणामस्वरूप देश के कोने-कोने से आयोग को आर्यसमाजों ने बड़ी संख्या में लोगों ने हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे। कानपुर से हण्टर कमीशन को दो सौ मैमोरियल भेजे गए, जिन पर दो लाख लोगों ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किए थे। हिन्दी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द जी द्वारा किया गया यह कार्य इतिहास की एक अन्यतम घटना है।

स्वामी दयानन्द जी की प्रेरणा से जिन प्रमुख लोगों ने हिन्दी भाषा सीखी उनमें जहां अनेक रियासतों के राज-परिवार के सदस्य हैं, वहीं कर्नल एच.ओ. अल्काट भी हैं जो अमेरिका में स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनके दर्शन करने भारत आये थे और भारत में स्वामी दयानन्द जी ने उनका आतिथ्य किया था। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शाहपुरा, उदयपुर, जोधपुर आदि अनेक स्वतन्त्र रियासतों के महाराज स्वामी दयानन्द जी के अनुयायी थे और स्वामी जी की प्रेरणा से ही उन्होंने अपनी-अपनी रियासतों में हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिया था।

स्वामी दयानन्द जी संस्कृत व हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी आदर करते थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है-''जब पुत्र-पुत्रियों की आयु पांच वर्ष हो जाये तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।" स्वामी जी अन्य प्रादेशिक भाषाओं को हिन्दी व संस्कृत की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे जो राष्ट्रीय एकता की पूरक होती। अपने जीवन काल में हिन्दी पत्रकारिता को भी आपने नई दिशा दी। आर्य दर्पण, आर्य प्रकाश आदि अनेक हिन्दी पत्र आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं इनकी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने समकालीन लोगों से हिन्दी में जो पत्र-व्यवहार किया है, वह भी समकालीन किसी एक व्यक्ति द्वारा किए गए पत्र-व्यवहार में सर्वाधि है। स्वामी दयानन्द जी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी आत्मकथा हिन्दी में लिखकर भावी आत्मकथा

लेखकों का मार्ग प्रशस्त किया। सृष्टि के आरम्भ में वेदों की उत्पत्ति से स्वामी दयानन्द जी के समय तक वेदों का संस्कृत भाषा में ही भाष्य होता था। स्वामी दयानंद जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों का हिन्दी भाषा में भाष्य कर आम लोगों का धर्मशास्त्रों में प्रवेश कराया। स्वामी दयानन्द जी सहित आर्यसमाज एवं उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित गुरुकुल एवं डी.ए.वी. स्कूल एवं कालेजों द्वारा भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। गुरुकुल कांगड़ी में देश में सर्वप्रथम विज्ञान व गणित सहित सभी विषयों की पुस्तकें हिन्दी माध्यम से तैयार कर उनका सफलतापूर्वक अध्यापन किया गया। मुस्लिम मत की धर्मपुस्तक कुरआन का हिन्दी में अनुवाद कराने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द जी को है। इसी के आधार पर उन्होंने इस मत की मान्यताओं की परीक्षा की व उसे अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में प्रस्तुत किया है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो मनुष्य जिस देशभाषा को पढ़ता है उसको उसी भाषा का संस्कार होता है। अंग्रेजी व अन्यदेशीय भाषाओं का पढ़ा हुआ व्यक्ति आचार व विचारों की दृष्टि से प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति से सर्वथा दूर देखा जाता है। अतः स्वामी जी का यह निष्कर्ष उचित ही है। संस्कृत व हिन्दी के अध्ययन, अध्यापन व व्यवहार से ही सनातन वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा सम्भव है।

थियोसोफिकल सोसायटी की नेत्री मैडम बेलेवेटेस्की ने स्वामी दयानन्द जी से उनके ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी थी। तब स्वामी दयानन्द जी ने उन्हें ३१ जुलाई, १८७६ को विस्तृत पत्र लिखकर अनुवाद की अनुमति देने से हिन्दी के प्रचार व प्रसार एवं हिन्दी की प्रगति में आने वाली बाधाओं से परिचित कराया था। स्वामी दयानन्द जी ने उन्हें लिखा था कि अंग्रेजी अनुवाद सुलभ होने पर देश-विदेश में जो लोग उनके ग्रन्थों को समझने के लिए संस्कृत व हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं, वह समाप्त हो जायेगा।

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय एक श्रोता द्वारा स्वामी दयानन्द जी से उनकी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद कराने की प्रार्थना करने पर श्रोताओं को सम्बोधित कर उन्होंने कहा था-'आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं कि जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।' स्वामी जी ने एक स्थान पर यह भी कहा है कि जो व्यक्ति इस देश का अन्न खाता, यहां निवास करता है और जो इस देश की वायु का सेवन व जल का ग्रहण करता है, यदि वह इस देश की संस्कृत व हिन्दी भाषा को नहीं सीखता, तो उससे क्या आशा की जा सकती है? सभी व्यक्तियों को इन भावों पर विचार करना चाहिये।

स्वामी दयानन्द तथा उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने आर्यभाषा हिन्दी की अनन्य प्रशंसनीय सेवा की है। हिन्दी को अध्यात्म सहित राजकार्य, आधुनिक साहित्य एवं संप्रेषण की भाषा बनाने में आर्यसमाज का सर्वोपरि योगदान है। एक षडयन्त्र के अन्तर्गत स्वामी जो विष देकर व उनके उपचार में असावधानी होने से ५८-५९ वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया था। यदि वह कुछ अधिक समय तक जीवित रहते तो अपने व्याख्यानों, शास्त्राओं तथा ग्रन्थों के द्वारा हिन्दी को न केवल समृद्ध करते अपितु देश देशान्तर में हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार भी करते। १४ सितम्बर, २०२० को हिन्दी दिवस को ध्यान में रखकर हमने इस लेख में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के हिन्दी के प्रचार व प्रसार में योगदान की चर्चा की है। आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे। **-१९६ चुक्खूवाला-२, देहरादून-२४८००१**

एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् (०२)

❑ ईश्वर आर्य...✍

मेरे द्वारा अपने पूर्व आलेख (अगस्त के अंक में प्रकाशित) में प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनीयसूत्र सिद्ध करने का प्रयास किया गया, उस आलेख पर कुछ प्रश्न प्राप्त हुए हैं, जिनका समाधान प्रस्तुत आलेख के रूप में प्रस्तुत है।

प्रथम प्रश्न - यदि ये सूत्र शिवसूत्र नहीं हैं तो इनको शिवसूत्र कहने की परम्परा कहाँ से आरम्भ हुई?

उत्तर - प्रस्तुत प्रश्न के सन्दर्भ में कोई प्रामाणिक उद्धरण तो प्राप्त नहीं होता है किन्तु **गुणाढ्य**कृत **बृहद्कथा** में एक कथा अवश्य प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है कि - प्राचीन काल में एक 'वर्ष' नामक गुरु थे, उनके दो प्रमुख शिष्य थे - कात्यायन और पाणिनि। इनमें कात्यायन बुद्धिसम्पन्न एवं मेधावी थे और पाणिनि मन्दबुद्धि थे। इसी कारण पाणिनि से अप्रसन्न होकर गुरुमाता ने उन्हें आश्रम से निकाल दिया। उसके पश्चात् पाणिनि ने शिव की तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने वरदान स्वरूप पाणिनि को व्याकरण का ज्ञान प्रदान किया। तदनन्तर पाणिनि पुनः गुरु वर्ष के आश्रम में आये तथा कात्यायन तथा पाणिनि में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें पाणिनि परास्त हुये। जिससे अप्रसन्न होकर शिव ने कात्यायन को शाप दिया और शाप के प्रभाव से कात्यायन का व्याकरण भूतल में समा गया। इसके पश्चात् शिव के द्वारा पाणिनि को प्राप्त व्याकरण जगत् में प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार की कथा के आधार पर पाणिनि-प्रत्याहारसूत्रों को शिवसूत्र के नाम से जाना जाता है।

अब यदि उपरोक्त कथा के आधार पर यह स्वीकार करें कि पाणिनीय व्याकरण शिव से प्राप्त है तो सर्वप्रथम कथा कभी सत्यता पर आधारित नहीं होती है, यह उसमें वर्णित पात्रों से ही सिद्ध होता है कि उपरोक्त कथा कितनी सत्य है।

अब यदि इस कथा के अन्य पहलु पर विचार करते हैं, यदि कात्यायन का व्याकरण पाणिनि के कारण नष्ट हुआ होता तो वे इनके शत्रु होते तथा वे पाणिनि व्याकरण को पूर्ण करने के लिए लिखे गए 'वार्तिक-ग्रन्थ' की रचना न करके उनके विरोध में नवीन व्याकरण शास्त्र की रचना करते, जिससे पाणिनीय व्याकरण का ह्रास हो जाता, तथा उनके व्याकरण शास्त्र की प्रसिद्धि हो जाती।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि यह पाणिनीय शिव के द्वारा उपदिष्ट न होकर स्वयं पाणिनीय मुनि द्वारा प्रोक्त है, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो पाणिनीय मुनि अपने व्याकरण शास्त्र में अवश्य ही आचार्य शिव के नाम दिग्दर्शन करते, जिस प्रकार अन्य व्याकरणाचार्यों का नाम प्राप्त होता है।

द्वितीय प्रश्न इस प्रकार प्राप्त होता है कि वैयाकरणों में अग्रगण्य आचार्य नागेश तथा आचार्य भट्टोजीदीक्षित के मत को किस आधार पर अस्वीकार किया गया?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्पष्ट करना चाहता हूँ कि संस्कृत साहित्य में एक प्रसिद्ध पंक्ति है- 'न हि खलु सर्वो सर्वं जानाति' (मुद्राराक्षस, अंक-१, पृ.सं.-३५, प्रकाशन-चौखम्बा संस्कृत सीरिज़) अर्थात् सभी सब कुछ नहीं जानते हैं। इस उक्ति के आधार पर विचार करें तो बहुत स्थानों पर आचार्य नागेश तथा आचार्य भट्टोजीदीक्षित ने पाणिनीय मत की अवहेलना की है। उन विषयों पर यहाँ विचार करते हैं-

आचार्य भट्टोजीदीक्षित ने 'वैयाकरणसिद्धान्त-

कौमुदी' में एक नवीन **'र'** प्रत्याहार की सिद्धी करते हुए कहा हैं कि- **एषामन्त्या इतः। लण्सूत्रेऽकारश्च। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः।** (वैयाकरणसिद्धान्त-कौमुदी, संज्ञाप्रकरण। पृ. सं. ११, प्रकाशन-चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन)

अर्थात् इन प्रत्याहारसूत्रों में अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक हैं, किन्तु 'लण्' इस सूत्र में 'ल्' में 'अँ' की भी इत्संज्ञा है। तथा हकारादि में अ उच्चारणार्थ है। इसी विषय में आचार्य भट्टोजिदीक्षित आगे कहते हैं कि **प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। 'लण्' सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा। प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणम् अनुनासिकः इत्यादिनिर्देशात्।** अर्थात् अनुनासिक वर्णों का ज्ञान पाणिनि के व्यवहार से होता है। 'लण्' सूत्र में स्थित अवर्ण की अनुनासिक के कारण इत्संज्ञा करने से ही साथ उच्चरित होने वाला रेफ 'र' तथा ल का ग्रहण करता है, इसलिए लण् सूत्र के ल में अवर्ण अनुनासिक है। इन्हीं का अनुसरण करते हुए आचार्य वरदराज ने लघुसिद्धान्त कौमुदी में लिखते हैं कि **हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लणमध्ये त्वित्संज्ञकः।** (लघुसिद्धान्तकौमुदी-संज्ञाप्रकरण, पृ.सं. -३, प्रकाशन-चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन)।

इसी प्रकार आचार्य वामन-जयादित्यकृत काशिका में **'हकारादिष्वकार उच्चारणार्थो नानुबन्धः, लकारे त्वमुनासिकः प्रतिज्ञायते तेन 'उरण रपरः'** (अ. १/१/५१) **इत्यत्र प्रत्याहारग्रहणाल्लपरत्वमपि भवति।'** (काशिकावृत्ति, व्याख्याकार-डॉ. रघुवीर वेदालंकार, प्रत्याहारप्रकरणम्, सूत्र-लण्, पृ.सं.-२३, प्रकाशन-चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन) अर्थात् हकारादि में अकार उच्चारण के लिए है, लण् के लकार में अकार अनुनासिक है, जिससे **'उरण रपरः'** (अ. १/१/५१) इस सूत्र में 'र' से रप्रत्याहारग्रहण करके रपरत्व जैसे लपरत्व भी हो जाए।

अब इन विषयों पर विचार करते हैं तो सर्वप्रथम पाणिनीय सूत्र **'आदिरन्त्येन संहेता'** (अ. १/१/७) इस सूत्र का अर्थ है कि आदिवर्ण अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ ग्रहण किया जाता हुआ, बीच के वर्णों का तथा अपने स्वरूप का ग्रहण होता है। तथा इसी सूत्र को प्रत्याहार सिद्धि के लिए रखा गया है।

इस सूत्र के अनुसार विचार करें तो उपरोक्त आचार्यों द्वारा उद्धृत 'र' प्रत्याहार तो स्वयं ही निरस्त हो जाता है, क्योंकि रप्रत्याहार की सिद्धि मध्य अकार की इत्संज्ञा करके की गई है।

'र' प्रत्याहार के विषय में स्वबुद्धि के अनुसार विचार करें तो यदि 'र' प्रत्याहार होता तो **'अतो लान्तस्य'** (अ. ७/२/२) इस सूत्र में लान्तस्य न कहकर पाणिनि मुनि केवल **'रान्तस्य'** कह देते, जिससे सूत्र लाघवता हो जाती, क्योंकि 'र' से ही रेफ तथा लकार का ग्रहण हो जाता। इसी प्रकार **'इको यणचि'** (अ. ६/१/७७) इस सूत्र में 'यण्' प्रत्याहार न कहकर केवल 'य' प्रत्याहार कह देते, क्योंकि 'य' प्रत्याहार बनाने से 'लण्' (प्र.सू.-६) में 'ल' इसके अकार से 'य' प्रत्याहार बन जाता तथा यण् प्रत्याहार में परिगणित वर्णों का 'य' प्रत्याहार में ही परिगणन हो जाता। 'यण्' के स्थान पर 'य' कहने से सूत्रों में लाघवता भी आ जाती। अब यदि **'रात्सस्य'** (अ. ८/२/२४) इस सूत्र में रात् पद से यह अर्थ हो जायेगा कि र प्रत्याहार से उत्तर सकार का लोप हो जाता है, किन्तु पाणिनि मुनि की विशेषता है कि उन्होंने ऐसा कोई प्रत्याहार नहीं रचा, जिससे व्याकरण में विवादास्पद स्थिति उत्पन्न हो, जैसे-पाणिनि मुनि ने प्रत्याहारसूत्रों में इत्संज्ञक वर्णों में प्रत्येक वर्ग का आदि तथा अन्तिम वर्ण दिया है, किन्तु तवर्ग का पवर्ग के प की इत्संज्ञा नहीं की, यद्यपि इसके लिए उन्होंने णकार की दोबार इत्संज्ञा करना उचित समझा, क्योंकि यदि वे ऐसा करते तो **'अतो गुणे'** (६/१/९७) में अत् प्रत्याहार विषयक शंका तथा **'अपोभिः'** (अ. ७/४/४८) में अप् प्रत्याहार विषयक शंका उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार अनेक सूत्रों में ऐसी विवादस्पद शंकाएं उत्पन्न हो जाती है। अतः इन

तथ्यों को देखते हुए कह सकते हैं कि 'र' प्रत्याहार को सिद्ध करना उपरोक्त आचार्यों का दुराग्रह मात्र है।

विचारणीय तथ्य -

१. यदि 'र' प्रत्याहार होता तो महाभाष्यकार पतंजलि मुनि इसका अवश्य वर्णन करते।

२. यदि 'र' प्रत्याहार होता तो आचार्य कात्यायन को 'लृवर्णाच्चेति वक्तव्यम्' इस वार्त्तिक को रचने की आवश्यकता नहीं होती है।

३. यदि 'र' प्रत्याहार होता तो आचार्य नागेश 'लघुशब्देन्दुशेखरः' में 'र' प्रत्याहार का खण्डन नहीं करते।

४. यदि प्रत्याहार होता तो शब्दशास्त्र में लपरत्व का उदाहरण अवश्य होता किन्तु हमें कहीं पर भी प्राप्त नहीं होता।

५. यदि कोई लपरत्व का उदाहरण होता तो पाणिनि मुनि 'अतोल्रान्तस्य' के समान 'उरण ल्रपरः' ऐसा सूत्र रच देते, जिससे कोई शंका उत्पन्न नहीं होती।

६. यदि 'ल' के 'अ' से प्रत्याहार बनता तो पाणिनिमुनि द्वितीय बार 'अण्' 'इण्' इन प्रत्याहारों को लण् के ण् से न रचकर 'ल' के 'अ' से रचते, जिससे इन प्रत्याहारों में शंकास्पद स्थिति न रहती।

७. यदि हकारादि में अकार उच्चारणार्थ है तो लकार में क्यों नहीं?

उपरोक्त तथ्य विचारणीय हैं तथा मेरे द्वारा उद्धृत प्रमाणों से उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर अवश्य स्पष्ट हो गया होगा, ऐसी मैं विद्वज्जनों से आशा करता हूँ।

- स्नातक,

गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

स्वामी देवव्रत सरस्वती के मार्गदर्शन में १४ दिवसीय शस्त्र-शास्त्र का अभ्यास सम्पन्न

पौन्धा : पूज्य स्वामी देवव्रत सरस्वती जी के मार्गदर्शन में गुरुकुल पौन्धा देहरादून में १४ दिवसीय उपनिषद् अध्ययन तथा आर्यवीर दल का शाखानायक व उपव्यायाम शिक्षक श्रेणी का प्रशिक्षण दिया गया। प्रतिदिन प्रातः ध्यान की कक्षाओं का संचालन किया गया, जिसमें ब्रह्मचारियों को पंचकोष एवं प्रत्याहार साधना का अभ्यास कराया गया। बृहदारण्यक एवं श्वेताश्वेतर उपनिषद् का अध्ययन कराया गया। सायंकालीन सत्र में १२ छात्रों को उपव्यायाम शिक्षक तथा २० छात्रों को शाखानायक श्रेणी का प्रशिक्षण प्रदान किया गया। प्रतिदिन 'व्यक्तित्व विकास' विषय पर चर्चा की गयी। शिविर समापन के अवसर पर स्वामी देवव्रत जी द्वारा लिखित पुस्तिका 'प्रेरणा' (युवाओं की समस्या एवं समाधान) का विमोचन किया गया। प्रस्तुत पुस्तिका का प्रकाशन माटा परिवार के सौजन्य से गुरुकुल पौन्धा देहरादून द्वारा किया गया है। पुस्तिका में सदा उत्साहित रहने के उपाय, जीवन में सफलता कैसे प्राप्त केरें?, सही निर्णय कैसे लें ?, बड़ा कार्य कौन-सा है ?, अनावश्यक चिन्ता से कैसे बचें?, युवकों में बढ़ता तनाव समस्या एवं समाधान, निराशा कारण एवं निवारण, क्रोध को वश में करने का उपाय, भय का मुकाबला, बोरियत (ऊब जाना) कैसे दूर करें? आदि २५ विषयों पर मार्गदर्शन किया गया है। आप इस पुस्तक को गुरुकुल पौन्धा देहरादून से प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुकुल के निकट बहने वाली नीमी नदी पर स्वामी जी द्वारा गायत्री ध्यान साधना की रिकॉर्डिंग भी गयी, जिसे आप गुरुकुल पौन्धा देहरादून यूट्यूब चौनल (gurukulpondhadehradun) पर भी देखकर लाभ ले सकतें हैं।

- ब्र. हर्ष आर्य, गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

मानव जीवन और नैतिकता

❑ डॉ. गीता वर्मा...✍

वर्तमान कभी भी निरापद या समस्या शून्य नहीं हो सकता, वह सदैव चुनौतियों से भरा होता है। आज हमारा समाज नैतिकता की समस्या से जूझ रहा है। आज मानव पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण कर अपने संस्कारों एवं संस्कृति को भूलता जा रहा है। नैतिकमूल्यों का उसके जीवन में निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। इसी कारण मानव स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित एवं लोलुप्तापूर्ण होता जा रहा है। उसकी सांस्कृतिक चेतना एवं शीलदृष्टि लुप्त होती जा रहीं है और उसका स्थान ले रही है अतिभौतिकवाद जनित अति उपभोगवाद की प्रवृत्ति। हम देखते हैं कि इस समस्या के मूल में जो कुछ है वही उसका परिणाम उसकी नियति बन जाता है और समस्या अत्याधिक विकराल रूप धारण करती जाती है। नैतिकमूल्यों में गिरावट के कारण मानव का पतन होता है। एवं उसका अन्तः सुखचैन लुप्त होता जा रहा है।

प्राचीन समय में साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर भी बहुत ध्यान दिया जाता था। हमारे पूर्वजों ने सम्पूर्ण जीवन काल को चार भागों में था, जिन्हें आश्रमों के नाम से जाना जाता था। इन आश्रमों को आधार ब्रह्मचर्य आश्रम था। ब्रह्मचर्य का अर्थ है संयम और नियमपूर्वक रहते हुए अपनी इन्द्रियों को वश में रखना। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी नगर के कोलाहल से दूर रहकर वनों और जंगलों में प्रकृति के आंगन में गुरुओं के पास रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे, उन्हें सांसारिक सुख-सुविधाओं से कोई सरोकार नहीं होता था। वे भिक्षा मॉगकर संयम और नियम से रहकर कष्ट उठाकर ज्ञान प्राप्त करते थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस समय प्राप्त किया हुआ ज्ञान सम्पूर्ण जीवन में काम आयेगा। इसी आधार पर मानव अन्य तीन आश्रमों को सफलतापूर्वक व्यतीत करता था।

नैतिक मूल्यों के पतन का इतिहास कौटिल्य और मेंकियावली जैसे विचारकों के सिद्धान्त से आरम्भ होता है। जिन्होंने राजहित की पूर्त्ति के लिए उचित अनुचित हर प्रकार के साधन प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की थी, फिर भी उन्होंने निजी स्वार्थों के लिए पवित्र साधनों की मर्यादा का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी थी। कालान्तर में हर क्षेत्र में विकृति की प्रवृत्ति बढ़ती गई और नैतिक मूल्यों का धरातल शनैः-शनैः रसातल तक अवमूल्यित हो गया।

सैंकडों वर्ष पूर्व भर्तृहरि कवि ने अपने नीतिशतक में जो धन की महिमा बताई वह आज के समाज में चरितार्थ हो रही है-

यस्यास्ति वित्तं स नर कुलीनः स पाण्डितः सः
श्रुतवान् गुणज्ञः। स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥

आज का मानव यह मानने लगा है कि यदि धनार्जन करने में जाति गुणशील वंश शौर्यादि सभी नष्ट हो जाये तो कोई चिन्ता नहीं क्योंकि धन के बिना तो समस्त गुण तृणवत् निस्सार है और धनी के पास सभी गुण और आवश्यक पदार्थ अपने आप आ जाते है। धन ही परमार्थ एवं परम लक्ष्य है, लेकिन नीतिशतककार भर्तृहरि ने नैतिक मूल्यों और व्यक्ति के चरित्र को धन से अधिक महत्ता प्रदान की है।

वृत यत्नेन संरक्षेद वित्तयायाति याति च।
आक्षंवो विनतः क्षीणे वृत्तमस्तु हतो हतः॥

धन मनुष्य के जीवन का आधार है परन्तु उसके अर्जन में शुद्धता व पवित्रता होनी चाहिए। यहाँ

मैं कहना चाहूँगी कि व्यक्ति को जीवन में अपरिग्रह को भी स्थान देना चाहिए क्योंकि–

दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

अर्थात् वित्त का सत्पात्र में दान देना ही उसकी प्रथम (उत्तम) गति है उपभोग करना द्वितीय (मध्यम) गति है और चौरादिकर्मों के द्वारा उसका नष्ट कर दिया जाना धन की तृतीय (अधम) गति है।

इस सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन समय में दान, धर्म, त्याग, अपरिग्रह जैसे जीवन मूल्यों को धारण करने वाले व्यक्ति की सामाजिक जीवन में सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। ऐसे लोग समाज में बहुत आदर के साथ देखे व पूजे जाते थे। इस प्रकार उनका मैन ईगो (मानवीय अहं) सन्तुष्ट रहता था। अब विद्वान् व धर्माचारी व्यक्तियों को प्रशासन का छोटा अधिकारी भी घास नहीं डालता हैं। अपने ईगो (अहंकार) को शान्त करने के लिए वह व्यक्ति या कम से कम अगली पीढ़ी तो उन मूल्यों को छोड़ने पर विवश हो ही जाती है।

मानव जीवन में नैतिकता के पतन की पृष्ठभूमि में मुख्यतः दो कारण देखे जा सकते है। सर्व प्रथम अनुचित और अनियमित रुप से आर्थिक लाभ प्राप्त करना और दूसरा वैयक्तिक हितों के लिए सामुदायिक हितों की अवहेलना करना।

धीरे–धीरे नैतिकता पुस्तकों में अध्ययन हेतु एक सिद्धान्त व घोषणामात्र तक सीमित रखने जैसी वस्तु बनकर रह गई। नैतिकता के पतन के अनेकानेक दुःखद परिणाम देखने में आये हैं। बख़्शीश, चन्दा, रिश्वत, उपहार, भेंटें आदि इसके छोटे स्वरूप है। काला बाजारी, तस्करी, नकली वस्तुओं का उत्पादन इसकी बड़ी सन्तानें कहीं जा सकती है। नैतिकता से विमुखता ने मानव की मूलप्रवृत्ति को ही विकृत करके रख दिया है। साहित्य, कला, विज्ञान खेलकूद से लेकर राजनीति और समाज सेवा तक कोई भी क्षेत्र इसके दुष्प्रभावों से अछूता नहीं रह गया है। क्या इंजीनियर, क्या डॉक्टर, क्या पुलिस सभी की इसमें बराबर की सहभागिता है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। जो व्यक्ति शारीरिक रुप से स्वस्थ होता है। वह मानसिक रुप से भी स्वस्थ होता है और उसकी मानसिक शक्ति विकसित होती है। शारीरिक और मानसिक रूप से जो व्याक्ति स्वस्थ होता है, उसे जीवन में सदा सफलता मिलती है। मानसिक शक्ति के कारण उसकी निर्णय शक्ति में वृद्धि होती है। जिससे वह जीवन में उचित मार्ग का निर्णय करने में सक्षम होता है और उसकी वजह से उसका चरित्र भी श्रेष्ठ होता है। पूर्वजों के आदर्श एवं चरित्र मनुष्य को सदाचारी बनने में सहयोग प्रदान करते हैं। महर्षि दयानन्द, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, श्री रामचन्द्र, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गॉधी आदि अपने चरित्र बल से ही महान् पुरुष बनें।

दिन–दूगनी रात–चौगुनी बढ़ती महंगाई और इसमें की जाने वाली स्टेट्स राइवलरी ने मानव के नैतिक पतन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अति उपभोक्तावाद ने मानव की धन लिप्सा को बहुत तीव्र कर दिया है। वह येन केन प्रकारेण अल्प समय में ही बहुत अधिक धनार्जन करना चाहता है। क्योकि आज समाज में सर्वाधिक धनवान् व्यक्ति सर्वाधिक प्रतिष्ठित माना जाता है।

नैतिकता का पतन होने से मानव जीवन विकृत होता जा रहा है और पाश्चात्य संस्कृति उस पर हावी होती जा रही है। इस समस्या का निराकरण किसी संस्था या संगठन के द्वारा कदापि सम्भव नहीं हो सकता है। इसके लिए ज्ञान व आदर्श रूप दीप हर हृदय में प्रज्ज्वलित करना आवश्यक है। हर गली, हर नुक्कड़, हर चौराहे पर वैचारिक क्रान्ति का दीप प्रज्ज्वलित करना होगा। लोगों के हृदय में घर कर गई विचार शून्यता को दूर करना होगा, इसके लिए हर व्यक्ति को

बताना होगा कि नैतिकमूल्यों का पतन एक आम बुराई है, जिसे एक सत्य के रूप में स्वीकार किया जाने पर लगा है। साथ ही समाज व सामाजिक नेतृत्व के मध्य स्थित संवाद हीनता की स्थिति को भी दूर करना होगा, जिससे कि लोगों को ज्ञान हो सके कि अनैतिकता के मिथ्या रंग महल की भूल भुलैया में मानवता इस प्रकार फँस गई है कि उसे अपने अस्तित्व की सरल व सीधी सड़क का भान तक नहीं रह गया है, साथ ही उल्लंघन कर्त्ताओं के लिए कठोर दण्ड की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। जिससे प्रत्यक्ष व सकारात्मक प्रभाव दृष्टिगत हो सकते हैं।

सम्पूर्ण मानवता को जनसहयोग, जन-जागरण तथा जन सम्पर्क के पथ पर अग्रसर कर एक बार फिर नैतिक मूल्यों के ईट गारे से चुनी गई आदर्श जीवन-संहिता की भव्य एवं अलौकिक अट्टालिका निर्मित की जा सकेगी।

-एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
बरेली कालेज, बरेली (उ०प्र०)

मानवता

❑ ब्र. भारतकुमारः...

(छन्दः - तोटकम्)

हतभासितभारतभाग्यघटा, धनधान्यधराधरणी ध्वरिता।
गुणगानगतागुरूगौरवता, मतिमानमनस्सु न मानवता ॥ १॥

रघुराघवराजितराजदृशः, अनिलानिलपोऽनिलजस्सदृशः।
भगवन्भवतात्तवकीर्तियुता, मनुमानवमानसमानवता ॥ २॥

शिशुपालवधे धृतचक्रगतिः, नरपुङ्गवपूजितपूर्णमतिः।
जगदीश्वर हे! जगतो जनिता, मम माधववन्मधुमानवता ॥ ३॥

शिवशीर्षशिरोमणिशान्तशिखा, पयपानपयोधरपुण्यसखा।
नदनन्दितनिर्मलनिर्मलता, हितचित्तरता खलु मानवता ॥ ४॥

रचिता प्रभुना रचनारूचिरा, कविकल्पितकोमलकान्तिकरा,
निगमागमगामिजनैर्जनिता तपतप्तसुतप्तसुमानवता ॥ ५॥

अभिवादनवन्दितवृद्धवताम्, अभिनन्दननन्दितनूतनताम्।
मम धर्मधुरी यशसा ध्वनिता, शुभशुभ्रगुणैरिह मानवता ॥ ६॥

उपदेशहलं प्रभुभक्तिफलम्, अखिलेऽपि गुणाः पृथिवीप्रथिता।
सुखदे! वरदे! मम मात! पिता, मयि तिष्ठतु हे निजमानवता ॥ ७॥

- शास्त्रितृतीयवर्षम्, श्रीमद्दयानन्दार्षज्योतिर्मठगुरुकुलम्, पौन्धा, देहरादूनम्

राष्ट्रभाषा हिन्दी

❑ ब्र. पीयूष कुमार...✍

'हिन्दी' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'सिन्धु' से है, जो कि सिन्धु नदी और उसके आस-पास की भूमि का वाचक था। यह 'सिन्धु' शब्द ईरान में जाकर 'हिन्दू' और फिर 'हिन्द' हो गया, जिसका अर्थ 'सिन्धप्रदेश' हुआ। यह 'हिन्द' शब्द धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत का वाचक हुआ। इसी में ईरानी का 'ईक' प्रत्यय लगाने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसके यूनानी शब्द 'इन्दिका' या अंग्रेजी शब्द 'इण्डिया' आदि विकसित रुप हैं। 'हिन्दी' भी 'हिन्दीक' का ही परिवर्त्तित रूप है, जिसका अर्थ 'हिन्द का' है। हिन्दी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'शरफुद्दीन यज़्दी' के 'ज़फ़रनामा' (१४२४) में मिलता है। हिन्दी जिस भाषा-धारा के विशिष्ट देशिक और कालिक रूप का नाम है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है। इससे पहले संस्कृत ही बोलचाल की भाषा थी, ५०० ई.पू. के पश्चात् अत्यधिक परिवर्त्तित हुई, जिसे 'पाली' की संज्ञा दी गई। इसका काल ५०० ई. पू. से प्रथम ई. तक था। इस काल की क्षेत्रीय बोलियाँ चार थीं-शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, मागधी ओर अर्धमागधी। प्रथम ईस्वी तक आते-आते यह बोल-चाल की भाषा और परिवर्त्तित हुई तथा प्रथम ईसवी से ५०० ई. तक का रूप 'प्राकृत' से अभिहित किया गया। प्राकृत से ही विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास हुआ, जो मुख्यतः लहंदा, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, हिन्दी, उड़िया, बांग्ला, असमिया आदि ये दश हैं।

हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश से निकलकर शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी रूपों में हुआ। हिन्दी भाषा का यह क्षेत्र हिमाचल प्रदेश, पंजाब का कुछ भाग, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, तथा बिहार है, जिन्हें हिन्दी भाषी प्रदेश कहते हैं। इस पूरे क्षेत्र में हिन्दी की ५ उपभाषाएं हैं-

पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी।

जिनके अन्तर्गत मुख्यतः १० बोलियां हैं। प्रारम्भ में हिन्दी और उर्दू भाषा की एक ही शैली होने से हिन्दी शब्द का प्रयोग दोनों भाषाओं के लिए होता था।

हिन्दी भाषा का वास्तविक आरम्भ १००० ई. से माना जाता है। इसके सम्पूर्ण काल को तीन भागों में विभक्त किया गया है-

१. आदिकाल (१०००-१५०० ई.) -

आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण १००० या ११०० ई. के आस-पास तक अपभ्रंश के अत्यधिक निकट था। धीरे-धीरे १५०० ई. तक आते-आते हिन्दी अपने शुद्धरुप में आ गयी और अपभ्रंश रुप प्रायः प्रयोग से निकल गए।

इस समय हिन्दी में नपुंसक लिंग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया था तथा भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ होने के कारण अपभ्रंशों की तुलना में तत्सम शब्दावली कुछ बढ़ने लगी थी। इसके अलावा मुस्लिम लोगों के आगमन से कुछ शब्द पश्तो, फारसी तथा तुर्की भाषा से हिन्दी में आए।

इस काल के साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित रूपों का प्रयोग मिलता है। इस युग के प्रमुख साहित्यकार-गोरखनाथ, चन्द्रबरदाई, कबीर आदि थे।

२. मध्यकाल (१४००-१८०० ई.)-

इस काल में हिन्दी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह प्रचालित हो चुकी थी और अपभ्रंश के रूप प्रायः हिन्दी से निकल गए। बहुत से शब्द फारसी

अरबी, पश्तो तथा तुर्की से हिन्दी में आ गए और उनकी संख्या लगभग ६०० हो गयी। दाबारों में फारसी का प्रयोग होने से उच्चवर्ग में फारसी का प्रचार हुआ, जिससे हिन्दी में 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़' ये पाँच नए व्यञ्जन प्रयोग में आए। भक्ति आन्दोलन के चरम बिन्दु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया था। यूरोप से सम्पर्क होने से कुछ पुर्तगाली, स्पेनिश, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी में आ गए।

इस काल में धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-स्थान की भाषा 'ब्रज' में ही विशेष रुप से साहित्य रचा गया। इस काल के प्रमुख साहित्यकार-जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव आदि थें।

३. आधुनिककाल (१८०० ई. से अब तक)-

आधुनिककाल में शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के करण 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़' ये १९४७ ई. तक सुशिक्षित लोगों में खूब प्रचलित हुए, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद अंग्रेजी प्रयुक्त होने से इनका प्रयोग लुप्त हो गया और इनके स्थान पर 'क, ख, ग' आदि प्रयोग होने लगे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ लोगों द्वारा 'ऑ' (कॉलज, डॉक्टर आदि) ध्वनि और नए संयुक्त व्यञ्जन जैसे 'ड' आदि का प्रयोग होने लगा था। हिन्दी पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गयी थी। प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिन्दी व्याकरण का रूप काफी स्थिर हो गया था। केवल कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी व्याकरण का मानक रूप सुनिश्चित हो चुका था। इस काल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार फारसी की तुलना में कहीं अधिक हुआ। साथ ही समाचार-पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में प्रयोग के कारण भी अंग्रेजी हमारे अधिक निकट आयी। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी भाषा वाक्य, रचना, मुहावरों तथा लोकोक्ति आदि के क्षेत्र में अंग्रेजी से बहुत अधिक प्रभावित हुई। शब्द भण्डार की दृष्टि से १८०० ई. से अब तक के आधुनिक काल को सामान्यतः छह सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। १. प्रथम १८०० से १८५० ई. तक हिन्दी शब्द भण्डार मोटे रूप से मध्यकाल के अन्तिम चरण जैसा था केवल इसमें अंग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी भाषा में आते जा रहे थे। २. द्वितीय १८५० से १९०० ई. तक अंग्रेजी के और शब्द आने के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा। ३. तृतीय १९०० ई. के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादकाल में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना प्रारम्भ हुआ। प्रसाद, पन्त और महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिवादी आन्दोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः वृद्धि हुई तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग काफी कम हुआ। सन् १९४७ ई. तक लगभग यही स्थिति रही।

इसके बाद हिन्दी विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भाषा होने से इसमें पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए अनेक शब्द अंगेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के लिए और अनेक शब्दों का निर्माण भी हुआ। स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी में मुश्किल से पाँच-छः हजार पारिभाषिक शब्द थे, किन्तु अब उनकी संख्या लगभग १ लाख और दिन-प्रतिदिन उनमें वृद्धि होती जा रही है। जिसके कारण हिन्दी अपनी अभिव्यञ्जना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

किसी भाषा के प्रचार-क्षेत्र में जैसे-जैसे विस्तार होता है, वैसे ही उसके एकाधिक रुप विकसित होने लगते है। संविधान के ३५१ वें अनुच्छेद के अनुसार - 'संपर्क भाषा के रुप में जिस हिन्दी का विकास होना है, वह कम-से-कम शब्द-भण्डार के क्षेत्र में भारत की प्रायः सभी भाषाओं से कुछ-न-कुछ ग्रहण करेगी। इस प्रकार राष्ट्रभाषा के रुप में उसका स्वरूप एक साकार से सार्वदेशिक होगा।' नागपुर में सन् १९७५ के

हुए 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' में इस दिशा में स्वदेश-विदेश के विभिन्न विद्वानों के साथ यथेष्ट विचार-विमर्श कर 'हिन्दी' को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया और इसे विश्व की एक अभिन्न भाषा का दर्जा दिया गया।

इसके पश्चात् वर्त्तमान परिपेक्ष में हम यह देखते हैं कि अब इस भाषा में सभी शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्ग अत्यधिक आंगल भाषा का प्रयोग करते हैं तथा अपने आपको गौरवान्वित मानते है। अब इस देश के लोग हिन्दी या संस्कृत बोलने में लज्जा का अनुभव करते हैं तथा जो हिन्दी बोलता है उसे अनपढ़ आदि की श्रेणी में रखते है और हीन भावना की दृष्टि से देखते है। आज सर्वत्र निजी तथा सरकारी कार्यों में अंग्रेजी का ही बोलबाला है, हिन्दी तो केवल नाममात्र की राष्ट्रभाषा रह गई है। राष्ट्रभाषा का वास्तविक मुकुट तो अंग्रेजी भाषा के सिर पर स्थित है। दूसरी ओर इस देश में मुसलमानों की बढ़ती जनसंख्या के कारण भी हिन्दी में 'उर्दू' का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। उपर्युक्त परिस्थितियों को देखकर ऐसा अनुभव होता है कि हम स्वतन्त्र नहीं अपितु परतन्त्र है। अब हम भारतीयों को अपने राष्ट्र के भविष्य के प्रति सजग रहना होगा। हमें अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए अपनी आने वाली पीढ़ी को हिन्दी और संस्कृत प्रेमी बनाइए तथा इसके साथ-साथ अन्य भाषाओं का भी ज्ञान अति आवश्यक है। अतः हम अपनी मातृभूमि, मातृभाषा तथा संस्कृति के प्रति कृतज्ञ होकर उनका अनुपालन करें।

यस्याः मुदा संस्कृतमस्ति माता,
मातेव या प्राप्तवती प्रसिद्धिम्।
साहित्यसोम प्रसृतेव यस्याः,
हिन्द्येव सा नोऽस्ति सुराष्ट्रभाषा॥

- शास्त्री प्रथम वर्ष,
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा

स्नातक/स्नातिका पंजीकरण

(गुरुकुलों से अधीत समस्त छात्र/छात्राओं के निमित्त)

श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा समस्त गुरुकुलों से अधीत छात्र/छात्राओं, स्नातक/स्नातिकाओं (व्रतस्नातक, विद्यास्नातक, विद्याव्रतस्नातक) का विवरण एकत्रित किया जा रहा है, जिससे भविष्य में आयोजित की जाने वाली गतिविधियों को आप तक सरलता से प्रेषित किया जा सके। अतः आप सभी से निवेदन है कि अविलम्ब प्रपत्र पूर्ण करें तथा अपने मित्रों को भी इस प्रपत्र को पूर्ण करने के लिए प्ररित करें। प्रपत्र का लिंक 9411106104 (आचार्य डॉ. धनंजय) तथा 8810005096 (शिवदेव आर्य) से प्राप्त कर सकते हैं।

आपको सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि भारत के समस्त गुरुकुलों को एक पोर्टल पर देखने के लिए श्रीमद्दयानन्द वैदिक गुरुकुल न्यास (परिषद्) द्वारा वेबसाईट का निर्माण प्रगतिपथ पर है।

- स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, अध्यक्ष (वैदिक गुरुकुल न्यास)

योगदर्शनशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्यः...✍

अवतरणिका-अथ असम्प्रज्ञातः समाधिः किमुपायः किंस्वभावो वेति?

पदार्थव्याख्या-अथ=अब **असम्प्रज्ञातः**=असम्प्रज्ञात **समाधिः**= समाधि **किम्**=किस **उपायः**=उपाय वाली **च**=और **किम्**=किस **स्वभावः**=स्वभाव वाली होती है, **इति**=ऐसा यहाँ कहा जा रहा है।

व्याख्या- अब 'असम्प्रज्ञात समाधि' किन उपायों वाली और किस स्वभाव वाली होती है। यह प्रस्तुत सूत्र के द्वारा बताया जा रहा है-

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः

(योगदर्शन.-१/१८)

पदार्थव्याख्या-

विराम=सभी वृत्तियों के रुकने के **प्रत्यय**=कारण **अभ्यासः**=परवैराग्य के होने वाली तथा **संस्कारशेषः**= संस्कारशेष रूप चित्त की समाधि **अन्यः**=सम्प्रज्ञात से भिन्न असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

सूत्रार्थ-

सब वृत्तियों के निरोध का कारण जो परवैराग्य है, उसकी पुनः-पुनः आवृत्ति से जो समाधि होती है तथा जिसमें निरोध के संस्कार वर्तमान रूप में व्युत्थान एवं 'सम्प्रज्ञात समाधि' के संस्कार अभिभूत होकर रहते हैं, वह 'असम्प्रज्ञात समाधि' है।

व्यासभाष्य-

सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये संस्कारशेषो निरोधश्चित्तस्य समाधिरसम्प्रज्ञातः। तस्य परवैराग्यमुपायः। सालम्बनो ह्यभ्यासस्तत्साधनाय न कल्पत इति। विरामप्रत्ययो निर्वस्तुक आलम्बनीक्रियते। स चार्थशून्यः। तदभ्यासपूर्वं चित्तं निरालम्बनमभावप्राप्तमिव भवतीत्येष निर्बीजः समाधि रसम्प्रज्ञातः॥

व्यासभाष्य पदार्थ व्याख्या-

सर्ववृत्तिप्रत्यस्तमये=चित्त की सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर **संस्कारशेषः**=संस्कार रूप में शेष **चित्तस्य**=चित्त की **निरोधः**=निरोध रूप **समाधिः**=समाधि **असम्प्रज्ञातः**=असम्प्रज्ञात है। **तस्य**=उस असम्प्रज्ञात समाधि का **उपायः**=उपाय **परं वैराग्यम्**=परवैराग्य है। **हि**=क्योंकि **सालम्बनो**=वितर्क आदि सम्प्रज्ञात समाधियों में चित्त के आलम्बन से किया गया **अभ्यासः**=एकाग्रता रूप अभ्यास **तत्साधनाय**=असम्प्रज्ञात समाधि के साधनभूत होने में **न**=नहीं **कल्पते**=समर्थ होता है, **इति**=इसलिए **विरामप्रत्ययः**=वृत्तियों के रोकने का उपाय परवैराग्य का अभ्यास **निर्वस्तुकः**=बिना बाह्यवस्तुओं के **आलम्बनी**=आलम्बन से **क्रियते**=किया जाता है। **स च**=और वह अभ्यास **अर्थशून्यः**= बाह्यवस्तुओं से रहित है, **हि**=क्योंकि **तदभ्यासपूर्वकम्**= उस परवैराग्य के अभ्यास वाला **चित्तम्**=चित्त **निरालम्बनम्**=आश्रय से रहित होता हुआ **अभावप्राप्तम्**= अभावरूप **इव**=जैसा **भवति**=होता है, **इति**=इस प्रकार से **एषः**=यह **निर्बीजः**=बाह्यवस्तु बीज रहित निर्बीज **समाधि**=समाधि **असम्प्रज्ञातः**=असम्प्रज्ञात होती है।

व्यासभाष्य व्याख्या-

चित्त की सभी वृत्तियों के अस्त हो जाने पर संस्कार ही जिसमें शेष रहते हैं ऐसा चित्त का निरोध 'असम्प्रज्ञात समाधि' है। उस समाधि का उपाय 'परवैराग्य' है। सालम्बन अभ्यास उसका साधन नहीं बन सकता। इसलिए विरामप्रत्यय अर्थात् वृत्तियों के विराम का जो कारण पदार्थहीन परवैराग्य उसको साधन रूप में स्वीकार किया जाता है और वह पर वैराग्य पदार्थहीन होता है। उसके अभ्यासपूर्वक चित्त निरालम्बन और स्वभावशून्य-सा हो जाता है। यह निर्बीज समाधि 'असम्प्रज्ञात' कही जाती है।

शेष अग्रिम अंक में...

हम और हमारे वे

डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री...
(राष्ट्रपतिपुरस्कारसम्मानित)

सूर्य ढ़लता रहा, चांद उठता रहा।
रात होती रही, दिन निकलता रहा।
और यह समय का महाचक्र चलता रहा।
और जिन्दगी को हमारी कुचलता रहा।
ये सौम्य चेहरे यहाँ सब बिगड़ते रहे।
हम बिना बात के ही झगड़ते रहे।
हाल उनका न पूछो जो अपने बनें।
रुठते वे रहे, हम मनाते रहे।
कोस कर वे हमे दोष देते रहे।
रोष को उनके हम हंस के लेते रहे।
वे सुनाते रहे, हम भी सुनते रहे।
और उनकी बातों पे सिर अपना भुनते रहे।
प्रेम से हमने पूछा कहो क्या हुआ?
गालियां देके हमें को भगाते रहे।
बात छोटी-सी इत्ती सी कह दी उन्हें,
तो आग बारुट मेरे लगाते रहे।
सामने जब मिले मूहँ झूमाते रहे।
देखकर भी वे नजरें बचाते रहे।
हम रिझाते रहे, वे खिजाते रहे।
और अपनी नजरों में हमको गिराते रहे।
वे न-माने, न-माने, न-माने, मगर
जिन्दगी भर उन्हें हम मानाते रहे।
वो समय था कि अपने पसीने से भी।
उनको आती थी भीनी से खुश यहाँ।
और अब अगर इत्र की शीशियां डाल लें।
तो उनके नांकों पर रुमाल होगी वहाँ।
कि जाके इक बार जो फिर न लौटे कभी।
दीप्ति यौवन वो जाने कहाँ चुक गया।
और आकर जो एक बार जो फिर न जाये कभीं
वो बूढापा मेरी देह में रुक गया।
दूरीयाँ टूटती, इन्द्रियां रुठती, देह से प्राण की
ग्रन्थियाँ छूटती,
तो दूर जाकर भी हम पास होते रहे।
पास होकर भी वे दूर जाते रहे।
खेल जब खत्म होने लगा अन्त में,
हम इशारे से उनको बुलाते रहे।
वे पशीजे नहीं, कुछ भी रीझे नहीं,
हम उन्हें देख आंसू बहाते रहे।
दोष किसका यहाँ, हम किसे दोष दें?
अन्त तक तो उन्हें सिर झुकाते रहे,
देह में प्राण की एक हिचकी बची,
फिर भी आशा की ज्योति जगाते रहे।
लेकिन वे न आये, न आये, न आये मगर,
जिन्दगी भर उन्हें हम बुलाते रहे
वें न माने, न माने, न माने मगर,
जिन्दगी भर उन्हें हम मनाते रहे।

आप आपने लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, ग्रन्थ-समीक्षा व सुझाव हमें ई.मेल - arsh.jyoti@yahoo.in कर सकते हैं।

संस्कृतशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्य...✍

क्रमशः...

❍ **सर्वनाम्नास्तृतीया च** (अ. २/३०/२७) **निमित्त-पर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्** यदि हेतु शब्द के साथ सर्वनाम का प्रयोग हो तो सर्वनाम और हेतु शब्द दोनों में तृतीया, पंचमी या षष्ठी विभक्ति होती है, इसके साथ-साथ प्रायः सभी विभक्तियों देखी जाती है। यथा-**केन/कस्मात्/कस्य हेतुना/हेतोः/हेतोः अत्र वसति।** (किस हेतु यहाँ रहते है?) **विमर्श** - यहाँ पर किस सर्वनाम के साथ हेतु शब्द का प्रयोग किया गया है, अतः सर्वनाम वाचक **केन/कस्मात्/कस्य** में तथा **हेतुना/हेतोः/हेतोः** में तृतीया, पंचमी अथवा षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

❍ **दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम्** (अ. २/३/३४) दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके अर्थवाची शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पंचमी विभक्ति होती है। यथा-**ग्रामस्य/ग्रामात् दूरं गुरुकुलं वर्तते।** (गॉव से दूर गुरुकुल है।) **विमर्श** - यहाँ पर दूर शब्द का प्रयोग हुआ है, अतः **ग्रामस्य/ग्रामात्** में षष्ठी तथा पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

❍ **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (अ. २/३/४४) **अधीगर्थाः स्मरणार्थः** अधि+इ धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन अर्थवाची धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा - **मातुः स्मरति।** (माता को स्मरण करता है।) **विमर्श** - यहाँ पर स्मृ धातु का कर्म माता है, अतः उसमें **मातुः** में षष्ठी विभक्ति हुयी है।

❍ **कर्तुरीप्सितमं कर्म, कर्मणि द्वितीया** (अ. २/३/२) जब स्मृ धातु अपने साधारण अर्थ (पाठ करना) में प्रयुक्त होगी तब द्वितीया विभक्ति ही होगी। यथा - **बालकः अष्टाध्यायीं स्मरति।** (बालक अष्टाध्यायी स्मरण करता है।) **विमर्श** - यहाँ पर साधारण अर्थ में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अतः **अष्टाध्यायीं** में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

❍ **कर्त्तरि कर्मणोः कृतिः** (अ. २/३/६५) कृदन्तशब्दों के कर्त्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। कृदन्त शब्द वे होते हैं, जिनके अन्त में कृत् प्रत्यय लगे हुये हों अर्थात् तृच् (तृ), अच् (अ), ल्युट् (अन), क्तिन् (ति), ण्वुल् (अक) आदि प्रत्यय शब्द के अन्त में होंगे, जिनका स्पष्ट विवेचन आगे प्रत्यय विचारों में किया जायेगा। यथा-**शिशोः रोदनम्।** (शिशु का रोना।), **कालस्य गतिः** (समय की गति), **पुस्तकस्य पाठः** (पुस्तक का पढ़ना) इत्यादि। **विमर्श**-शिशोः रोदनम्, यहाँ पर रोदनम् के कृदन्त होने पर प्रयुक्त कर्ता में षष्ठी विभक्ति हुयी है।

❍ **यतश्च निर्धारणम्** (अ. २/३०/४१) एक समुदाय में से किसी एक को विशेषता दिखाकर छांटा जाये तो उसमें षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होती है। यथा-**कवीनां/कविषु कालिदासः श्रेष्ठः।** (कवियों के कालिदास श्रेष्ठ है।) **विमर्श** - यहाँ पर कवियों के समुदाय में निर्धारण करने से कवियों के समुदाय **कवीनां/कविषु** में षष्ठी व सप्तमी विभक्ति हुयी है।

❍ **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः** (अ. २.३.१६) आशीर्वाद देने में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके पर्यायवाची शब्दों के साथ चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति होती है। यथा -**बालकाय/बालकस्य आयुष्यं/मद्रं/भद्रं/कुशलं/सुखं/अर्थं/हितं भूयात्।** (बालक का कल्याण हो।) **विमर्श** - यहाँ पर बालक को

आशीर्वाद आदि प्रदान किया जा रहा है, अतः **बालकाय/बालकस्य** में चतुर्थी अथवा षष्ठी का प्रयोग किया गया है।

- **षष्ठी चानादरे** (अ. २/३/३८) जिसका अनादर (तिरस्कार) करके कोई कार्य कराया जाता है तो उस तिरस्कृत होने वाले में षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होगी। यथा – **तस्य रुदतः/तस्मिन् रुदति शिशुः बहिरगच्छत्।** (उसके रोने पर (तिरस्कृत होने पर) शिशु बाहर गया।) **विमर्श** – यहाँ पर उस व्यक्ति के तिरस्कृत होने के कारण उसी व्यक्ति में **तस्य रुदतः/तस्मिन् रुदति** यहाँ षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति हुयी है, न कि शिशु में।
- **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्** (अ. २/३/७२) बराबर, समान या इसके अर्थवाची तुल्य, सदृश, सम, सकाश आदि शब्दों के योग में तृतीया एवं षष्ठी विभक्ति होती है। यथा – **कृष्णेन/कृष्णस्य तुल्यः/सदृशः/समः नकुलः।** (कृष्ण के समान नकुल है।) **विमर्श** – यहाँ पर तुल्यार्थो के योग में कृष्ण शब्द में तृतीया या षष्ठी विभक्ति हुयी है।

अधिकरण कारक एवं सप्तमी विभक्ति विचार

- **आधारोऽधिकरणम्** (अ. १/४/४५) क्रिया के आश्रयभूत कर्ता तथा कर्म का जो आधार हो अर्थात् क्रिया जहाँ पर हो रही हो, उस कारक को अधिकरण कहते हैं। यथा – **बालकः कटे आस्ते।** (बालक चटाई पर बैठता है।) **विमर्श** – यहाँ पर चटाई आधार में सप्तमी विभक्ति हुयी है।
- **वैषयिकाधारे सप्तमी**–विषय में, बारे में तथा समय बोधक शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – **मोक्षे इच्छास्ति।** (मोक्ष के विषय में इच्छा है।) **सः सायंकाले शयनं करोति।** (वह सायंकाल में सोता है।) **विमर्श**–यहाँ पर विषय मोह है, अतः सप्तमी विभक्ति हुयी है।
- **सप्तमीपंचम्यौ कारकमध्ये** (अ. २/३/७) समय और मार्ग का अन्तर बतलाने वाले शब्दों में पंचमी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा–**इहस्थोऽयं धनुर्धरः क्रोशे लक्ष्यं विध्यति। क्रोशाल्लक्ष्यं विध्यति। विमर्श**–यहाँ पर धनुर्धर कोश तक लक्ष्य बींधता है, अतः मार्गान्तरवाची **क्रोशे** शब्द में सप्तमी विभति हुयी है।
- प्रेम, आसक्ति और आदरसूचक धातुओं और शब्दों में (स्निह्, अभिलष्, अनुरञ्ज, आदृ, रप्, रतिः, स्नेहः, आसक्तः, अनुरक्तः आदि) के साथ सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – **अंकितः पुत्रे स्नेह्यति।** (अंकित पुत्र से स्नेह करता है।)
- **आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्** (अ. २/३/४०), **साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः** (अ. २/३/४३) संलग्न अर्थवाले शब्दों (व्यापृतः, आयुक्तः, लग्नः, आसक्त, व्यग्रः, तत्परः आदि) के साथ सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – **गौरवः गुरुकुलकर्मणि लग्नः वर्तते।** (गौरव गुरुकुल के काम में लगा हुआ है।), **शिवः शास्त्रे प्रवीणः।** (शिव शास्त्र में प्रवीण है।) **विमर्श** – यहाँ पर शास्त्र कर्म में लग्न, चतुर होने से **शास्त्रे** में सप्तमी विभक्ति हुयी है।
- फेंकने अर्थ की धातुओं क्षिप्, मुच् और अस् आदि के साथ जिस पर कोई चीज फेंकी जाये, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – **क्षेत्रे मृगे सोमेन्द्रः बाणं क्षिपति।** (खेत में मृग पर सोमेन्द्र बाण फेंकता है।) **विमर्श** – यहाँ पर क्षिप् धातु के योग में **मृगे** में सप्तमी विभक्ति हुयी है।
- **आधारे सप्तमी** (इष्टी) विश्वास और श्रद्धा अर्थवाली धातुओं के साथ जिस पर विश्वास व श्रद्धा की जाये, उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – **रामः मित्रे विश्वसिति।** (राम मित्र पर विश्वास करता है।), **छात्रः गुरुकुले श्रद्द्धाति।** (छात्र गुरुकुल पर श्रद्धा करता है।) विश्वास के साथ द्वितीया विभक्ति भी देखी जाती है।**शेष अग्रिम अंक में..**

–गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

प्रेरणापुस्तक-विमोचन

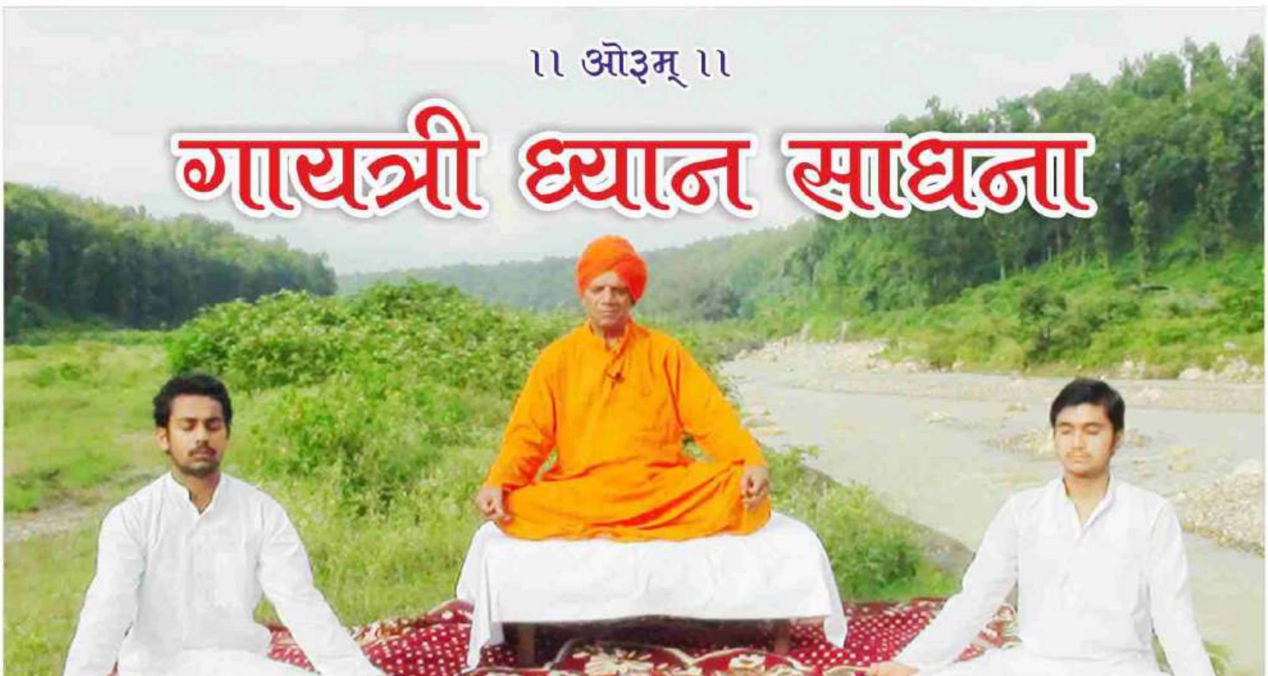

स्वामी देवव्रत जी की गायत्री ध्यान, पंचकोष एवं पंचतत्त्व साधना
विधि का अभ्यास करने के लिए तथा डॉ. रवीन्द्रकुमार द्वारा निरुक्त एवं महाभाष्य
की कक्षाओं को सुनने के लिए आप हमारे
Youtube चैनल Gurukulpondhadehradun पर देख सकते हैं।

पंजीयन संख्या : **UTTBIL/2008/23546** डाक पंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2019-2021

पतंजलि®

प्रकृति का आशीर्वाद

करोड़ों देशवासियों का
भरोसेमन्द हर्बल टूथपेस्ट

दन्त कान्ति

दन्त कान्ति के लाभ

✓ लौंग, बबूल, नीम, अकरकरा, तोमर, बकुल आदि बेशकीमती जड़ी बूटियों से निर्मित दन्त कान्ति,
ताकि आपके दाँतों को मिले लंबी उम्र व असरदार प्राकृतिक सुरक्षा।

✓ पायरिया, मसूड़ों की सूजन, दर्द व खून आना, सेंसिटिविटी, दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन आदि को दूर करे।

✓ कीटाणुओं से लम्बे समय तक बचाकर दे दाँतों को प्राकृतिक सुरक्षा कवच।

पूरी दुनिया अब नैचुरल प्रोडक्ट्स को अपना रही है
आप भी पतंजलि के नैचुरल प्रोडक्ट्स अपनाइए और प्रकृति का आशीर्वाद पाइए

आवाहन– राष्ट्र के जागरुक व्यापारियों व ग्राहकों से हम विनम्र आवाहन करते हैं कि करोड़ों देश भक्त भारतीयों की तरह, आप भी पतंजलि के उत्पादों को अपनी दुकानों व दिलों में सर्वोच्च प्राथमिकता देकर जन–जन तक पहुँचाएं और देश की सेवा व समृद्धि में योगदान दें। जिससे महात्मा गाँधी, भगत सिंह व राम प्रसाद बिस्मिल आदि सभी महापुरुषों के स्वदेशी अपनाने के सपने को मिलकर साकार कर सकें।

पतंजलि आयुर्वेद के लगभग 500 उत्पाद हैं, ये शुद्ध खाद्य उत्पाद व हर्बल सौन्दर्य उत्पाद हमारे पतंजलि स्टोर्स के साथ ओपन मार्केट की दुकानों पर भी उपलब्ध हैं।

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, दून वाटिका-२ पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति प्रिन्टिंग प्रेस, ३५ कांवली रोड, देहरादून से मुद्रित।
मुद्रण तिथि - ३ सितम्बर २०२० :: डाक प्रेषण तिथि - ८ सितम्बर २०२०